18 शिक्षा का एक रूप : फिल्म-निर्माणकला

çjd ,o jpukRed dke dk rjhdk



अंकित पोगुला

स्कूल जाने वाले हर बच्चे की तरह मुझे भी लगता था कि हर पल मैं इतनी सारी जानकारियाँ आत्मसात कर रहा हूँ कि रटना एकदम जायज है ! परेशानी केवल इस बात को लेकर नहीं थी, इस बात की भी थी कि "मैं" जो कुछ भी सोच रहा था, महसूस कर रहा था या समझ रहा था, उसे अभिव्यक्त नहीं कर पा रहा था।

छुटपन में दुनिया को देखने का हमारा नजरिया क्या था, दुनिया हमें कैसी लगती थी – खुश, भ्रामक या फिर विरोधी? हम किस बात को महत्त्व देते थे; दूसरे क्या चाहते थे कि हम क्या पसन्द करें लेकिन उसकी तुलना में हमें क्या पसन्द/नापसन्द था? खुशी, परिवार, सफलता, स्कूल और दोस्तों के बारे में मैं क्या सोचता था? 12 साल तक कई परीक्षाएँ देने एवं ढेर सारी उत्तर–पुस्तिकाओं को भरने के बावजूद ये कुछ ऐसे सवाल थे जिनके बारे में हमने स्कूल छोड़ने के अनेक वर्षों बाद तक बात ही नहीं की थी। शायद इनमें से कुछ सवालों के जवाब मुक्त वातावरण में ही दिए जा सकते हैं, जहाँ हमें अपने आपसे जुड़ने का समय मिलता है और हम अभिव्यक्ति के लिए खुद को स्वतंत्र महसूस करते हैं।

हर बच्चे या व्यक्ति में अपने आपको व्यक्त करने की स्वाभाविक इच्छा होती है। शिक्षा की प्रक्रिया अभिव्यक्ति की इस सुविधा के बिना अधूरी लगती है। अभिव्यक्ति केवल पाठ्येतर गतिविधि नहीं है बल्कि वह तो पाठ्यक्रम की गतिविधि है, जिससे बच्चे की ग्रहणशीलता बढ़ सकती है। यहीं पर कला एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। व्यक्ति के भीतर जो कुछ चल रहा है उसे कला रचनात्मक रूप से प्रकट करती है। फिर चाहे वह चित्रकला हो, प्रदर्शन कला हो या फिल्म–निर्माण हो। कला वह झरोखा है जिसके माध्यम से बच्चा कल्पनाशीलता व रचनात्मकता से जुड़ता है और दुनिया के बारे में अपने नजरिए को प्रस्तुत करता है!

'शिक्षा में फिल्म' क्यों

मैं देश भर में, अलग–अलग पृष्ठभूमि वाले बच्चों, युवाओं एवं वयस्कों के लिए फिल्म–निर्माण की कार्यशालाएँ आयोजित करता रहता हूँ। हर कोई फिल्मों के इस आकर्षक माध्यम को लेकर जो प्रतिक्रिया दिखाता है, वह अनुभव बेहद असाधारण रहा है। लेकिन फिल्में क्यों? वे इतनी लुभावनी क्यों हैं? कैमरा वर्क तथा सम्पादन के कौशल के निर्माण के अलावा फिल्में विद्यार्थियों के लिए और कौन–सी भूमिका निभा सकती हैं?

हम मनुष्य बहुत चाक्षुष जीव हैं और अपने सम्प्रेषण में इन्द्रियों का प्रयोग करना पसन्द करते हैं। हम लगातार शब्दों, ध्वनियों एवं भावनाओं के लिए छवियाँ बनाते रहते हैं। उदाहरण के लिए जैसे ही हम ये शब्द पढ़ते हैं, "पीछे पर्वतमालाएँ, सामने हरे–भरे खेत और पास में बहती जल–धारा," वैसे ही हमारे मन में अनेक छवियाँ उभरने



लगती हैं। दुनिया के बारे में हमारी व्याख्या बहुत कुछ इसी रूप में होती है। सफलता, खुशी, मौज–मस्ती, कला इन सभी के साथ छवियाँ जुड़ी हैं। संगीत या ध्वनि से इन छवियों का परिष्कार होता है या उन्हें नए आयाम मिलते हैं। कुल मिलाकर फिल्में अधिकतम सम्प्रेषण व कल्पनाशील पुनर्रचना का सृजन करती हैं।

पिछले एक दशक में सूचनाओं और दृश्य चित्रों का आगमन तेजी से हुआ है और इस वजह से बच्चों के सामने अखबार, टेलीविजन, विज्ञापन और फिल्मों जैसी ढेर सारी दृश्य–श्रव्य सामग्री मौजूद है। आज उनका ज्ञान बढ़ गया है और वे दुनिया के बारे में बहुत सारी बातें जानते हैं, हालाँकि ये उनके स्कूल, घर और दोस्तों से सम्बन्धित रोजमर्रा की जिन्दगी के परे हैं। पहले की तुलना में आज के बच्चे बड़ी तेजी से एक बहु–आयामी और गैर–रेखीय तरीके से सोचने में सक्षम हैं। परिणाम स्वरूप आज हमारे सामने ऐसे बच्चे हैं जिनका दिमाग अधिक कल्पनाशील एवं चुनौतीपूर्ण है।

दृश्य माध्यम में एक बच्चे (या हर व्यक्ति) की कल्पनाशीलता को बाँधे रखने और पूर्ण रूप से संतुष्ट करने की क्षमता है। शिक्षक इस बात को लेकर संघर्ष करते नजर आते हैं कि बच्चे विभिन्न विषयों को मन लगाकर पढ़ें। लेकिन मैंने



देखा है कि छोटी फिल्मों व वृत्तचित्रों के माध्यम से दृश्य चित्रों का उपयोग करने से बच्चों की जिज्ञासा एकदम से बढ़ जाती है, भले ही वे शहरीकरण या जलवायु–परिवर्तन जैसे जटिल विषय ही क्यों न हों। अत: एक शिक्षक के रूप में हमारे लिए यह बात और भी जरूरी हो जाती है कि हम इन माध्यमों का उपयोग करें ताकि बच्चों के रचनात्मक दिमाग को काम में तल्लीन रखा जा सके।

बच्चे: एक प्रेक्षक एवं रचनात्मक कथाकार

फिल्म और वृत्तचित्रों के सम्पर्क में आने के शुरुआती सालों में मैंने बच्चों और युवाओं पर बनी कई ऐसी फिल्में देखीं जिन्हें वयस्क फिल्मकारों ने बनाया था। इनमें बच्चे कुतूहल का विषय थे, अवलोकन का विषय थे तथा भविष्य को समझने का विषय थे! मैं अकसर सोचा करता कि अगर विषय (यानि बच्चे) को पर्यवेक्षक बनाकर उसकी नजर से दुनिया का अवलोकन किया जाए तो कैसा रहे। इस प्रक्रिया में कैमरा एक शक्तिशाली उपकरण साबित हुआ। हाथ में कैमरा हो तो बातचीत के लिए शब्दों, वाक्यों एवं वाक्य संरचनाओं की इतनी जरूरत नहीं पड़ती। बच्चा जो कुछ दिखाना चाहता है, उसे चुन पाता है, उसे एक अलग या नया अर्थ दे पाता है तथा सम्भवत: और अधिक स्पष्ट रूप से अपनी बात कह पाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में करीब एक दशक से काम करते हुए तथा एक वीडियो प्रशिक्षक के रूप में मुझे इस बात से बहुत हैरानी हुई है कि मैंने बच्चे की रचनात्मकता और दुनिया के बारे में उसकी समझ को लेकर कितनी सारी बातों की 'कल्पना' कर रखी थी। फिल्म–निर्माण कार्यशालाओं में पटकथा लेखन एवं विजुलाइजेशन के बारे में बताते समय मैं यह देखकर चौंक गया कि लोगों का दृष्टिकोण कितनी विविधता लिए हुए है और वे अपने आसपास की चीजों को कितने रचनात्मक तरीके से देख पाते थे। यह दृष्टिकोण उन व्यक्तियों का था जो शब्दों में अपनी बात उतनी स्पष्टता से व्यक्त नहीं कर पाते थे, लेकिन कैमरे और फिल्मों की सहायता से वे अपनी बात बड़ी सहजता से कह गए।

एक बार मैं दिल्ली की फिल्म कार्यशाला में छात्रों के समूह के साथ काम कर रहा था, जिसमें री–सायकिलिंग पर एक मिनट की फिल्म बनानी थी। इस बात पर काफी बहस हुई कि इसे कैसे दर्शाया जाए और आँकड़ों से भरपूर फिल्म बनाने से कैसे बचा जाए। तब एक नया सुझाव सामने आया कि कचरे के डिब्बे में पड़ी हुई एक पुरानी और एक अपेक्षाकृत नई कमीज के बीच बातचीत करवाई जाए कि कैसे री–सायकिलिंग नए कपड़े के लिए जीवन रक्षक है! यह एक बड़ी चुनौती थी कि इस पूरी

प्रक्रिया और बात करती हुई कमीजों को कैसे शूट किया जाए। विद्यार्थियों ने ही यह विचार दिया कि उनके द्वारा पहनी हुई कमीजों पर चेहरा चित्रित किया जाए, सीने वाले हिस्से पर चेहरा बनाया जाए और हाव–भाव के लिए हाथों का संचालन किया जाए। विद्यार्थियों ने पाँच दिनों के भीतर एक अभिनव पटकथा लिखी, शूटिंग की और सम्पादन किया। मैं बच्चों की रचनात्मकता, चातुर्य एवं उत्साह को देखकर चकित रह गया। 20 लोगों का वह शान्त समूह अब सार्थक रूप से काम में जुटा हुआ, रचनात्मक एवं उत्साह से लबालब भरा हुआ समूह बन गया था !

सौन्दर्य–बोध के पीछे का अर्थ

अभिव्यक्ति हर व्यक्ति के अस्तित्व का अनिवार्य हिस्सा है। इसके अनेक रूप हैं जैसे कि संगीत, कविता, लेखन, नृत्य, चित्रकला, फिल्म आदि। जितना हम किसी रूप की गहराई में जाते हैं, उतना ही हम उसमें अधिकाधिक उत्कृष्ट और रचनात्मक होते जाते हैं। रूप के साथ–साथ यह बात भी उतनी ही जरूरी है कि उस अभिव्यक्ति के पीछे सन्देश क्या है? हम इस माध्यम द्वारा "क्या" कहना चाहते हैं और क्यों?

मैं एक फिल्मकार एवं शिक्षक होने के नाते इस बात को अपनी जिम्मेदारी मानता हूँ कि बच्चे के साथ काम करते वक्त अर्थ एवं रूप–इन दोनों पहलुओं का ध्यान रखना चाहिए। वास्तव में, मेरे हिसाब से विद्यार्थियों को सामाजिक एवं पर्यावरणीय मुद्दों तथा आत्म–खोज से जोड़ने के लिए फिल्में एक बहुत अच्छा माध्यम हैं। दो साल पहले हैदराबाद और चण्डीगढ़ में मैंने विद्यार्थियों के लिए कार्यशाला की थीं। इनमें लघु वृत्तचित्रों एवं विचार–विमर्श के माध्यम से मैंने अपना ध्यान इस बात पर केन्द्रित किया कि विद्यार्थी अपने शहरों के साथ अपने सम्बन्ध के बारे में कैसा महसूस करते हैं और क्या वह सम्बन्ध उनके घर और स्कूल से परे भी किसी बात को आवश्यक बनाता है? हमने शहरी जीवन के बारे में और अधिक जानकारी पाने के लिए शहरीकरण तथा पर्यावरण पर कुछ फिल्में देखीं। फिल्मों ने वह कर दिखाया जो सालों का शहर–प्रवास नहीं कर पाया! वे शहरी जीवन–शैली के साथ प्रदूषण और



कचरे के कई और अन्त: सम्बन्ध देख पाए।

एक बार इस सम्बन्ध को महसूस करने के बाद, वे सहज ही इस बात के लिए प्रेरित हुए कि उस शहर को ऐतिहासिक दृष्टि से जानें और उसे दृश्य रूप में दर्ज करें। फिर जो कायापलट हुई, वह अद्भुत थी–फिल्म के लिए विद्यार्थियों ने शहर की पर्यावरणीय स्थिति पर शोध करना शुरू कर दिया! अगले कुछ दिनों में हमने नालियों, गन्दी नहरों, गन्दे पिछवाड़ों, मॉल और मल्टीप्लेक्सों के पीछे छिपे शहर के खाली स्थानों आदि का दौरा किया। यह बहुत रोमांचक अनुभव था और दिलचस्प बात यह थी कि बच्चे कैसे उसी शहर को अपने कैमरे में कैद कर रहे थे–शहर वही था, दृश्य वही थे लेकिन नजरिया बिलकुल अलग!

मुझे लगता है कि जो कुछ हम सम्प्रेषित करना चाहते हैं, उसे लेकर अगर हमारे मन में स्पष्टता हो तो हमारी रचनात्मकता और कलात्मक क्षमता बहुत बढ़ जाती है। मेरे हिसाब से जिस अर्थ को हम सम्प्रेषित करना चाहते हैं, वह स्पष्ट हो तो हम उसे रचनात्मक रूप से अभिव्यक्त करने के लिए प्रेरित होते हैं। जितने अधिक रचनात्मक हम होते हैं, उतने ही अधिक लोगों को सन्तुष्ट करने में हम सफल होते हैं। इस प्रकार, अर्थ या मुख्य सामग्री और रचनात्मक अभिव्यक्ति साथ–साथ चलते हैं।

मूल सौन्दर्यबोध बनाम उधार का सौन्दर्यबोध –एक चुनौती

जब मैं स्कूल में पढ़ा करता था, तब स्कूल की वाद–विवाद और नाटक टीम का सदस्य था। पर मुझे अक्सर लगता

था कि जो कुछ भी मैं कहता या करता था उसे दरअसल मैं कहना या करना नहीं चाहता था। ये तो ऐसे भाषण या नाटक थे जो प्रचलन में थे या फिर दर्शकों को अपील करने वाले थे और शिक्षकों या सदन के कप्तानों को लगता था कि उनसे हमें पुरस्कार मिल सकता है। इनमें इस बात की अधिकता थी कि क्या अच्छा 'सुनाई' या 'दिखाई' देता है न कि ये कि मुझे कैसा लगता है। दूसरे शब्दों में मुझे लगता था कि मैं सौन्दर्यबोध को उधार में ले रहा हूँ क्योंकि मैं दूसरों के शब्दों को उनके बताए अनुसार बोल रहा था।

इसने मेरी रचनात्मकता को प्रभावित भी किया और सीमित भी। मुझे कल्पना एवं सौन्दर्यबोध की अपनी भावना के साथ खुद का आधार तैयार करने में थोड़ा वक्त लगा। मैंने उस तरह से प्रदर्शन क्यों नहीं किया जिसमें मैं सहज महसूस करता था? क्या शिक्षकों को मेरे सौन्दर्यबोध पर काम करके उसे विकसित करना चाहिए था या मुझसे अपने खुद के सौन्दर्यबोध की एक नई समझ बनाने को कहना चाहिए था?

एक शिक्षक तथा वीडियो प्रशिक्षक के रूप में मुझे लगता है कि हम अवचेतन रूप से, युवाओं और बच्चों को किसी सन्देश विशेष या 'अपने' सौन्दर्यबोध की ओर, कितनी कुशलता से चालित कर देते हैं। इससे बच्चे को लगता है कि सौन्दर्यबोध की उसकी सहज भावना उतनी अच्छी नहीं है ! मुझे लगता है कि हम शिक्षकों के लिए इस मुद्दे पर काम करना एक बड़ी चुनौती है और अगर इसका समाधान न ढूँढ़ा जाए तो बच्चे की अभिव्यक्ति और उसके कलात्मक होने की क्षमता को बड़ी हानि पहुँच सकती है।

हमें पहले तो बच्चे को इस बात की अनुमति देनी चाहिए कि वह स्वतंत्रता से खुद को अभिव्यक्त करे और उसके बाद एक फिल्म, कहानी या किसी अन्य कला के रूप में उस अभिव्यक्ति को परिवर्तित करने की दिशा में इस प्रक्रिया को आसान बनाने में मदद करनी चाहिए। साथ ही, विद्यार्थी जितने लम्बे समय के लिए लगातार किसी माध्यम के सम्पर्क में रहेंगे, उतना ही अधिक वे उसकी सूक्ष्म बारीकियों को समझेंगे तथा और अधिक रचनात्मक बनेंगे ।

डिजिटल मीडिया के आने के कारण आज छोटे–छोटे बच्चे भी कम्प्यूटर और कैमरा आदि का प्रयोग करने लगे हैं और आज हमारे घरों में एक ऐसी पीढ़ी है जो तकनीक से अच्छी तरह परिचित है। अत: यह जरूरी है उन्हें तकनीक के साथ प्रेरक व रचनात्मक रूप से काम करने के अवसर दिए जाएँ। शिक्षा के एक अंग के रूप में फिल्म–निर्माण उन्हें यह अवसर प्रदान करता है। फिल्मों के माध्यम से रचनात्मक व कलात्मक रूप से अपने आपको अभिव्यक्त करने के साथ–साथ इस माध्यम में इस बात की भी जबरदस्त गुंजाइश है कि हम अपने आन्तरिक स्व तक पहुँच सकें।



__अंकित पोगुला__ एक स्वतंत्र फिल्म निर्माता हैं। वे नई दिल्ली में ट्यूनिंग फोर्क फिल्म्स नामक एक प्रोडक्शन कम्पनी चलाते हैं जो वृत्तचित्रों का निर्माण करती है और फिल्म–निर्माण की कार्यशालाएँ आयोजित करती है। जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली से जनसंचार में स्नातकोत्तर की पढ़ाई करने के बाद अंकित भारत भर में शहरी और ग्रामीण युवाओं के साथ विकास, मीडिया व पहचान के मुद्दों का पता लगाने के लिए एक माध्यम के रूप में फिल्म का उपयोग कर रहे हैं। उनसे ankitpogula@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। __अनुवादः__ नलिनी रावल